Shodh Sangam Patrika
E-ISSN: 3049-0707, Volume 3 | Issue 2 | (April - June 2026)

कहलूर रियासत में जुग्गा आंदोलन: औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध कृषक प्रतिरोध

दिनेश कुमार [1], शोभा मिश्रा [2]

[1] शोध अध्येता, इतिहास विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला (हि. प्र.)

[2] सहायक आचार्य, इतिहास, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय संध्याकालीन अध्ययन विभाग, शिमला (हि. प्र.)

सारांश

यह शोध पत्र कहलूर रियासत में हुए जुग्गा आंदोलन का ऐतिहासिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है, जो औपनिवेशिक काल में कृषक प्रतिरोध का एक महत्वपूर्ण उदाहरण था। यह आंदोलन अत्यधिक राजस्व भार, बेगार प्रथा तथा प्रशासनिक दमन के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुआ, जिसने ग्रामीण समाज में व्यापक असंतोष को जन्म दिया। प्रस्तुत अध्ययन में आंदोलन के कारणों, स्वरूप एवं प्रभावों का विश्लेषण किया गया है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि पहाड़ी रियासतों में कृषक समुदाय ने औपनिवेशिक तथा रियासती सत्ता के विरुद्ध संगठित और सशक्त प्रतिरोध किया। अध्ययन के निष्कर्षों से यह पाया गया कि जुग्गा आंदोलन केवल आर्थिक असंतोष तक सीमित नहीं था, बल्कि इसमें सामाजिक-सांस्कृतिक प्रतीक और सामूहिक चेतना द्वारा संगठित प्रतिरोध की गहन भूमिका थी। यह शोध न केवल इस आंदोलन के क्षेत्रीय महत्व को रेखांकित करता है, बल्कि हिमालयी रियासतों की सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना पर इसके प्रभाव को भी उजागर करता है।

कूट शब्द: जुग्गा आंदोलन, कहलूर रियासत, कृषक प्रतिरोध, बेगार प्रथा, औपनिवेशिक प्रशासन, दूम्ह, ग्रामीण असंतोष, सांस्कृतिक प्रतीक, सामाजिक चेतना।

परिचय

औपनिवेशिक भारत में कृषक आंदोलनों का अध्ययन ग्रामीण समाज की संरचनात्मक विषमताओं, सत्ता-संबंधों और शोषण की प्रक्रियाओं को समझने का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में विभिन्न क्षेत्रों में हुए कृषक प्रतिरोधों ने यह स्पष्ट किया कि कृषक समुदाय केवल निष्क्रिय शोषित वर्ग नहीं था, बल्कि वह अपनी सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों के प्रति सजग, संगठित और सक्रिय प्रतिक्रिया देने में सक्षम था। हिमालयी रियासतों में औपनिवेशिक प्रशासन प्रत्यक्ष रूप से नहीं, बल्कि स्थानीय शासकों और अधिकारियों के माध्यम से संचालित होता था। इस द्विस्तरीय सत्ता-संरचना ने कृषकों के सामने शोषण के दोहरे स्रोत निर्मित किए: एक ओर ब्रिटिश प्रशासन की कर और भू-राजस्व नीति, दूसरी ओर स्थानीय रियासती अधिकारियों द्वारा दमनात्मक उपाय। इस संरचना ने ग्रामीण समाज में असंतोष, विरोध और विद्रोह की स्थितियों को जन्म दिया। कहलूर रियासत में जुग्गा आंदोलन इसी द्विस्तरीय सत्ता-संरचना और संरचनात्मक शोषण के प्रतिरोध के रूप में उभरता है। यह आंदोलन केवल आर्थिक असंतोष का परिणाम नहीं था, बल्कि यह सामाजिक-सांस्कृतिक प्रतीकों और धार्मिक विश्वासों के माध्यम से अभिव्यक्त एक संगठित और प्रतीकात्मक प्रतिरोध था। दूम्ह और जुग्गा जैसी पारंपरिक विरोध पद्धतियों ने स्पष्ट किया कि हिमालयी कृषक समुदाय अपने प्रतिरोध को केवल प्रत्यक्ष संघर्ष के रूप में नहीं, बल्कि नैतिक और प्रतीकात्मक दबाव के माध्यम से भी व्यक्त करता था।

यह अध्ययन न केवल जुग्गा आंदोलन के ऐतिहासिक तथ्य प्रस्तुत करता है, बल्कि इसके कारणों, स्वरूप, सांस्कृतिक

प्रतीकों और सामाजिक प्रभावों का सम्यक विश्लेषण करता है। यह शोध पत्र स्पष्ट करता है कि स्थानीय ग्रामीण समाज ने अपने अधिकारों, सामाजिक न्याय और आर्थिक हितों की रक्षा हेतु सामूहिक सक्रियता, संगठन और रणनीतिक सोच का प्रयोग कैसे किया। इसके अतिरिक्त, अध्ययन औपनिवेशिक और रियासती सत्ता के बीच जटिल अंतर्संबंधों को भी उजागर करता है। औपनिवेशिक भारत में कृषक आंदोलनों पर व्यापक अध्ययन किया गया है; हिमालयी रियासतों, विशेषतः कहलूर रियासत में जुग्गा आंदोलन पर केंद्रित विश्लेषणात्मक अध्ययन अपेक्षाकृत सीमित है। अधिकांश अध्ययनों ने कृषक प्रतिरोध को केवल आर्थिक शोषण और राजस्व नीतियों के संदर्भ में समझा है, जबकि स्थानीय सांस्कृतिक प्रतीकों, धार्मिक विश्वासों और पारंपरिक विरोध-पद्धतियों जैसे जुग्गा (दूम्ह) की भूमिका पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया है। इसके अतिरिक्त, स्थानीय काव्य-स्रोतों और मौखिक परंपराओं का सीमित उपयोग होने के कारण आंदोलन की सामाजिक-सांस्कृतिक गहराई पूर्णतः स्पष्ट नहीं हो पाई है।

प्रस्तुत अध्ययन इसी शोध-अंतराल को भरने का प्रयास करता है। शोध-पत्र सामंती राजस्व व्यवस्था, मनमाने करों, बेगार प्रथा तथा गृह-कर जैसे मुद्दों का विश्लेषण करते हुए कहलूर रियासत में कृषक प्रतिरोध की प्रकृति को स्पष्ट करता है। यह अध्ययन दर्शाता है कि जुग्गा आंदोलन केवल आर्थिक असंतोष का परिणाम नहीं था, बल्कि यह सामाजिक-सांस्कृतिक प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त एक संगठित जन-प्रतिरोध था। विशेष रूप से यह अध्ययन जुग्गा आंदोलन को केवल आर्थिक असंतोष के परिणाम के रूप में नहीं, बल्कि सांस्कृतिक प्रतीकों, धार्मिक आस्थाओं और ग्रामीण सामूहिक चेतना के माध्यम से व्यक्त प्रतिरोध की एक विशिष्ट ऐतिहासिक अभिव्यक्ति के रूप में व्याख्यायित करता है। इस अध्ययन मुख्यतः यह समझने का प्रयास करता है कि जुग्गा आंदोलन के उद्भव के प्रमुख कारण क्या थे? क्या यह आंदोलन केवल आर्थिक शोषण के विरुद्ध प्रतिरोध था अथवा सांस्कृतिक-धार्मिक प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त व्यापक राजनीतिक चेतना का भी परिचायक था? साथ ही, दूम्ह और जुग्गा जैसी परंपरागत विरोध-पद्धतियों की भूमिका का भी परीक्षण किया गया है।

अनुसंधान पद्धति

प्रस्तुत अध्ययन ऐतिहासिक अनुसंधान पद्धति पर आधारित है। इसमें प्रशासनिक अभिलेख, गजेटियर, स्थानीय काव्य-स्रोत तथा संबंधित पुस्तकों और शोध-पत्रों का उपयोग किया गया है। अध्ययन में वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक एवं तुलनात्मक पद्धतियों के माध्यम से जुग्गा आंदोलन की पृष्ठभूमि, स्वरूप और महत्व का विश्लेषण किया गया है।

आंदोलन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

कहलूर रियासत (वर्तमान बिलासपुर ज़िला) बाहरी पहाड़ियों में निचली सतलुज घाटी में स्थित है। भारत के विभाजन से पहले यह शिमला हिल स्टेट्स की एक प्रमुख रियासत थी।[1] रियासत की प्रशासनिक संरचना द्विस्तरीय सत्ता-व्यवस्था पर आधारित थी। एक ओर स्थानीय राजा और रियासती अधिकारी प्रत्यक्ष रूप से शासन संचालन करते थे, जबकि दूसरी ओर ब्रिटिश औपनिवेशिक सत्ता अप्रत्यक्ष नियंत्रण के माध्यम से प्रशासनिक संरचना को प्रभावित करती थी। इस प्रकार कृषकों को रियासती दमन और औपनिवेशिक प्रभाव दोनों का संयुक्त दबाव सहना पड़ता था, जिसने ग्रामीण समाज में असंतोष को तीव्र किया। जुग्गा आंदोलन की उत्पत्ति को समझने के लिए 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध की प्रशासनिक, आर्थिक तथा सामाजिक परिस्थितियों का विश्लेषण आवश्यक है। सन् 1883 ई. में बिलासपुर रियासत की गद्दी पर राजा अमरचन्द आसीन हुए। वे राजा हीराचन्द के पुत्र थे और उन्हें शिमला के डिप्टी कमिश्नर द्वारा गद्दी पर स्थापित किया गया।[2] राजा हीराचन्द के शासनकाल में प्रशासन अपेक्षाकृत सुदृढ़ था, जिसका श्रेय उनके सक्षम मंत्रियों और व्यवस्थित प्रशासनिक तंत्र को दिया जाता है। किंतु राजा अमरचन्द के शासनकाल में यह स्थिति तेजी से बदलने

लगी। उनके अधीन कार्यरत अधिकारी वर्ग न केवल अयोग्य था, बल्कि भ्रष्टाचार, चापलूसी तथा अनाचार में भी लिप्त था। स्वयं राजा का प्रशासनिक मामलों में सीमित हस्तक्षेप तथा व्यक्तिगत मनोरंजन में अधिक रुचि रखने के कारण शासन व्यवस्था शिथिल हो गई। परिणामस्वरूप राज्य में अव्यवस्था, हिंसा और असंतोष का वातावरण उत्पन्न हुआ। इस काल में कृषक वर्ग पर अत्यधिक आर्थिक और सामाजिक दबाव डाला गया। बेगार प्रथा को कठोरता से लागू किया गया, भूमिकर में वृद्धि की गई तथा लगान की वसूली में अमानवीय व्यवहार अपनाया गया। इसके अतिरिक्त पनचक्की कर जैसे नए करों का आरोपण तथा भूमि पर जबरन सरकारी अधिकार स्थापित करने की नीतियों ने किसानों की स्थिति को अत्यंत दयनीय बना दिया।[3] यद्यपि बाद में बेगार प्रथा को समाप्त करने का प्रयास किया गया, किंतु उसके स्थान पर लगभग 25% नकद कर बाथांगना लागू किया गया, जिसने कृषकों पर आर्थिक बोझ को और बढ़ा दिया।[4] इन सभी कारणों से ग्रामीण समाज में व्यापक असंतोष व्याप्त हो गया। स्थिति इतनी गंभीर हो गई कि किसानों ने दूम्ह का आयोजन कर दिया, जो पहाड़ी क्षेत्रों में विरोध का एक पारंपरिक और सामूहिक स्वरूप था। ग्रामीण प्रतिनिधि अपनी शिकायतें लेकर राजा के समक्ष प्रस्तुत होना चाहते थे, किंतु उन्हें मार्ग में ही रोक दिया गया। इससे उनका आक्रोश और अधिक बढ़ गया और कुछ स्थानों पर उन्होंने हिंसात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए स्थानीय अधिकारियों के साथ मारपीट की। इस आंदोलन का प्रारंभिक केंद्र गेहड़वीं परगना बना, जहाँ से यह धीरे-धीरे आसपास के क्षेत्रों में फैल गया।[5] प्रशासन ने इस प्रतिरोध को दबाने के लिए कठोर दमनात्मक उपाय अपनाए। पुलिस और सेना द्वारा किसानों पर अत्याचार किए गए, उनके घरों को लूटा गया तथा निर्दयतापूर्वक मारपीट की गई। इससे जनाक्रोश और अधिक तीव्र हो गया और दूम्ह आंदोलन का प्रसार व्यापक स्तर पर होने लगा। स्थिति शीघ्र ही नियंत्रण से बाहर हो गई। किसान संगठित होकर राजधानी बिलासपुर की ओर बढ़ने लगे और विद्रोह की स्थिति उत्पन्न हो गई। इसके प्रत्युत्तर में रियासती सेना और पुलिस ने आधुनिक हथियारों के साथ किसानों का सामना किया। दोनों पक्षों के बीच संघर्ष हुआ, जिसमें अनेक लोग घायल हुए और कई लोगों की मृत्यु हुई। निहत्थे किसानों पर किए गए इस दमन ने आंदोलन को और अधिक उग्र बना दिया।

अंततः स्थिति को नियंत्रित करने के लिए राजा ने अंग्रेज़ी शासन से सहायता माँगी। अंग्रेज़ रेजिडेंट के हस्तक्षेप के पश्चात प्रशासन को किसानों की शिकायतें सुनने के लिए बाध्य होना पड़ा। करों में आंशिक कमी की गई तथा दोषी अधिकारियों के विरुद्ध कार्रवाई की गई। इस प्रकार दूम्ह आंदोलन का तत्कालीन चरण समाप्त हुआ, किंतु इसने आगे चलकर जुग्गा और अन्य प्रतिरोध आंदोलनों के लिए आधार तैयार किया। इन्हीं परिस्थितियों में जुग्गा आंदोलन का उदय हुआ।

गेहड़वीं, लुल्हाण, कोट तथा पंतेड़ा गाँवों के ब्राह्मणों ने कुप्रशासन के विरोध में जुग्गा अनुष्ठान किया। पीड़ित ब्राह्मण एक जुग्गा (घास और लकड़ी से बनी एक छोटी-सी झोपड़ी) तैयार करते थे और उस पर एक ध्वज फहराते थे। इसके बाद ब्राह्मण अपनी आराध्य देवी-देवताओं की मूर्तियों के साथ उस झोपड़ी के भीतर बैठ जाते थे।[6] वे अपने साथ गाय, कुत्ता और एक बिल्ली भी रखते थे।[7] नौ महीने तक वे इंतज़ार करते थे। जैसे ही उन्हें गिरफ्तार करने का कोई प्रयास किया जाता, वे उस झोपड़ी (जुग्गा) में आग लगा देते और उसी के साथ स्वयं भी जलकर अपने प्राणों की आहुति दे देते थे। ऐसी धारणा थी कि जुग्गा में होने वाली मृत्यु का पाप राजा पर आएगा। विशेषतः गो-हत्या और ब्रह्म-हत्या जैसे महापापों के भय के कारण यह अनुष्ठान शासन पर नैतिक दबाव का प्रभावी माध्यम बन जाता था। यह प्रक्रिया यहीं समाप्त नहीं होती थी।[8] तब उसकी जगह कोई दूसरा आदमी जुग्गा बनाकर उसमें बैठ जाता था। इसी तरह कृषकों ने अपने-अपने गाँव के बाहर जुग्गे बना लिए थे, जिसकी ख़बर सुपरिटेंडेंट शिमला को भेज दी थी।[9] सुपरिटेंडेंट के समझाने पर भी लोग शासक से मिलने नहीं आए और अपने जुग्गे में बैठे रहे। इनको पकड़ने के लिए जब राजा ने

निरंजन तहसीलदार के नेतृत्व में एक छोटी सेना गेहड़वीं भेजी, तो सेना के आगमन पर रावलू और घेथल नामक ब्राह्मणों ने अपने जुग्गे को अग्नि देकर आत्मबलिदान कर दिया। इसके पश्चात स्थानीय ब्राह्मणों ने हिंसात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त की। गुलाबा सिंह ने तहसीलदार पर गोली चलाई, उसे पकड़ लिया और जुग्गा में जलाकर मार डाला।[10] समकालीन काव्य-स्रोतों में उल्लेख मिलता है:

तिसी मास बिगरी प्रजा दिज जात महानी।

बड़ी घनी उर के बिषै सुख की जुगि रानी॥

कोट पंड तेहड़ा गेढ़मी ललबाण पछ्याना।

चार गाम अजु खुद भये नहि मानै आना॥

जुग्गे बांध लिये तिनै बड़ लूट मचाई।

काहू कही न मानही गरबे समुदी॥

समझावन हित नृप पठ्यो तहसील जुदारा।

नाम निरंजन ताह को स्यानो मति चारा॥

कतल कीन अपराध बिन मिल कै षिन तासा।

आयो समै बिनाश को मति भई बिनाशा॥[11]

यह काव्यांश कहलूर रियासत में व्याप्त जन-असंतोष, जुग्गा आंदोलन के प्रसार तथा रियासती सत्ता के प्रति ग्रामीण प्रतिरोध को अभिव्यक्त करता है। साथ ही, निरंजन तहसीलदार की हत्या के माध्यम से यह इस आंदोलन के उग्र स्वरूप और प्रशासनिक संकट की ओर संकेत करता है। यह काव्य-स्रोत रियासती दृष्टिकोण को प्रतिबिंबित करता है, अतः इसकी व्याख्या अन्य स्रोतों के साथ तुलनात्मक रूप से की जानी चाहिए।

इस घटना ने आंदोलन को विद्रोह का रूप दे दिया। स्थिति के और अधिक बिगड़ने पर प्रशासनिक तंत्र अस्थिर हो गया और सेना को पीछे हटना पड़ा। अगले दिन लगभग 150 ब्राह्मण परिवार अपने परिवारों सहित (कांगड़ा) हमीरपुर की ओर पलायन कर गए, जो उस समय ब्रिटिश क्षेत्र था। हालाँकि, उन्हें पकड़ लिया गया और क़ैद कर लिया गया; बाद में उन्हें वापस लाया गया। वज़ीर मियाँ काहन्न सिंह को विद्रोह उकसाने और संदेह के आधार पर जेल में डाल दिया गया, और उन पर 1000 रुपए जुर्माना भी लगाया गया।[12] उसी वर्ष लोहन गाँव के नाथू नामक ब्राह्मण द्वारा भी जुग्गा में आत्मदाह की घटना सामने आई, जिसने इस आंदोलन की व्यापकता और गहराई को और स्पष्ट किया। यद्यपि इन घटनाओं के पश्चात भी राजा अमरचन्द ने अपनी नीतियों में तत्काल कोई व्यापक परिवर्तन नहीं किया, तथापि कुछ प्रशासनिक सुधार अवश्य किए गए। न्यायिक मामलों का लेखा-जोखा नागरी (हिंदी) में रखने का आदेश दिया गया, जिससे प्रशासनिक पारदर्शिता बढ़ाने का प्रयास हुआ। प्रशासनिक इकाइयों का पुनर्गठन कर तहसील और थाना प्रणाली लागू की गई, ज़मीन की नाप-जोख और पड़ताल होने लगी।[13] इस प्रकार स्पष्ट होता है कि कहलूर रियासत में जुग्गा आंदोलन केवल एक आकस्मिक या सीमित घटना नहीं था, बल्कि यह प्रशासनिक अव्यवस्था, आर्थिक शोषण, सामाजिक असमानता तथा सांस्कृतिक-धार्मिक परंपराओं के संयुक्त प्रभाव का परिणाम था। दूम्ह और जुग्गा जैसे

आंदोलनों ने यह सिद्ध किया कि पहाड़ी समाज न केवल अपनी परिस्थितियों के प्रति सजग था, बल्कि वह संगठित प्रतिरोध और आत्मबलिदान जैसे कठोर उपाय अपनाने में भी सक्षम था।

जुग्गा अनुष्ठान में ब्राह्मण समुदाय की भूमिका प्रमुख दिखाई देती है, तथापि इसे केवल जाति-विशेष का आंदोलन नहीं माना जा सकता। उस समय ब्राह्मण समुदाय का एक बड़ा वर्ग स्वयं कृषक जीवन से जुड़ा हुआ था तथा वही राजस्व, बेगार और प्रशासनिक दमन से प्रभावित था। इसलिए जुग्गा आंदोलन को व्यापक ग्रामीण असंतोष और कृषक प्रतिरोध की अभिव्यक्ति के रूप में समझना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। कृषक आंदोलनों के अध्ययन में विभिन्न दृष्टिकोण देखे गए हैं। रणजीत गुहा जैसे सबाल्टर्न इतिहासकार इसे आकस्मिक विद्रोह नहीं, बल्कि सामाजिक-सांस्कृतिक संरचनाओं और परंपरागत प्रतीकों पर आधारित संगठित राजनीतिक क्रियाएँ मानते हैं।[14] इसी परिप्रेक्ष्य को आगे बढ़ाते हुए डेविड हार्डीमन अपनी पुस्तक में यह प्रतिपादित करते हैं कि उपेक्षित समुदायों के आंदोलन केवल आर्थिक शोषण की प्रतिक्रिया नहीं होते, बल्कि वे धार्मिक विश्वासों, देवी-आस्था और सामूहिक चेतना के माध्यम से संगठित होते हैं, जो उन्हें एक नैतिक और वैचारिक शक्ति प्रदान करते हैं।[15]

कहलूर रियासत का जुग्गा आंदोलन इस दृष्टिकोण को पुष्ट करता है, जिसमें झोंपड़ी (जुग्गा) में देवताओं की मूर्तियों के साथ बैठकर आत्मबलिदान का प्रतीक प्रस्तुत किया जाता था, जिसके माध्यम से किसान सत्ता पर नैतिक दबाव बनाने का प्रयास करते थे। यहाँ प्रतिरोध केवल भौतिक संघर्ष नहीं था, बल्कि धार्मिक-सांस्कृतिक प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त एक गहन सामाजिक चेतना का परिणाम था। इसके विपरीत एरिक स्टोक्स इसे मुख्यतः आर्थिक कारणों जैसे अत्यधिक लगान और भूमि अधिग्रहण से जोड़ते हैं,[16] जबकि बिपन चंद्र राष्ट्रवादी इतिहासकार इसे व्यापक राष्ट्रीय आंदोलन के परिप्रेक्ष्य में देखते हैं।[17] इस प्रकार वर्तमान अध्ययन स्पष्ट करता है कि जुग्गा आंदोलन केवल आर्थिक असंतोष तक सीमित नहीं था, बल्कि इसमें सामाजिक न्याय, सांस्कृतिक प्रतीक और धार्मिक आस्थाओं के माध्यम से बहुआयामी प्रतिरोध की स्पष्ट अभिव्यक्ति मिलती है।

कहलूर रियासत में जुग्गा आंदोलन का स्वरूप अत्यंत विशिष्ट और बहुआयामी था। यह केवल पारंपरिक विद्रोह या सामूहिक असहयोग तक सीमित नहीं रहा, बल्कि इसमें सांस्कृतिक, धार्मिक और सामाजिक प्रतीकों का गहरा समावेश था। आंदोलनकारियों ने अपने विरोध को प्रकट करने के लिए प्रतीकात्मक एवं अत्यंत नाटकीय तरीके अपनाए। आंदोलनकारियों द्वारा झोंपड़ियों को जलाना तथा आत्मबलिदान जैसे प्रतीकात्मक उपाय अपनाना इस बात का संकेत है कि यह प्रतिरोध केवल प्रशासनिक विरोध नहीं था, बल्कि नैतिक दबाव की एक सुनियोजित रणनीति भी थी। इस प्रकार जुग्गा आंदोलन पहाड़ी समाज में सांस्कृतिक प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त प्रतिरोध की एक विशिष्ट परंपरा को दर्शाता है।

यह आंदोलन मुख्यतः जुग्गा नामक अनुष्ठान पर आधारित था, जिसमें ब्राह्मण या कृषक वर्ग के सदस्य घास, फूस और लकड़ी से निर्मित झोंपड़ी में अपने पशुओं सहित बैठ जाते थे और न्याय की प्रतीक्षा करते हुए संभावित आत्मबलिदान का संकेत देते थे।[18] इस प्रकार का प्रदर्शन केवल विरोध का माध्यम नहीं था, बल्कि एक धार्मिक-सांस्कृतिक प्रतीक बनकर शासन-सत्ता पर नैतिक दबाव उत्पन्न करता था। इसमें प्रत्यक्ष हिंसा का अभाव होते हुए भी इसकी भावनात्मक तीव्रता और धार्मिक वैधता इतनी प्रबल होती थी कि प्रशासन इसे नजरअंदाज नहीं कर सकता था। इस प्रकार जुग्गा आंदोलन को एक अनुष्ठानिक और नाटकीय प्रतीकात्मक प्रतिरोध के रूप में देखा जा सकता है।

दूसरी ओर यह आंदोलन दूम्ह जैसी पारंपरिक विरोध पद्धति से भी जुड़ा हुआ था। दूम्ह ग्रामीण समाज में प्रचलित एक

ऐसी सामूहिक प्रक्रिया थी, जिसके माध्यम से लोग अपनी शिकायतों और असंतोष को संगठित रूप में व्यक्त करते थे। इसमें समुदाय के लोग एकत्र होकर प्रशासन के विरुद्ध अपनी असहमति प्रकट करते थे,[19] जिससे एक प्रकार का सामाजिक और सामूहिक दबाव उत्पन्न होता था। हालाँकि, दूम्ह सामूहिक प्रतिरोध का स्वरूप था, जबकि जुग्गा धार्मिक-प्रतीकात्मक विरोध की विधि थी। जुग्गा में आत्मबलिदान की चेतावनी से नैतिक दबाव उत्पन्न होता था, जबकि दूम्ह में संख्या-बल और सामुदायिक एकता के आधार पर प्रशासन को चुनौती दी जाती थी।

अतः कहा जा सकता है कि जुग्गा आंदोलन अधिक भावनात्मक, नाटकीय और धार्मिक आधार पर केंद्रित था, जबकि दूम्ह अपेक्षाकृत तर्कसंगत, संगठित और सामाजिक एकता पर आधारित प्रतिरोध का रूप था। इन दोनों रूपों का संयुक्त अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि कहलूर रियासत का ग्रामीण समाज केवल हिंसात्मक विद्रोह पर निर्भर नहीं था, बल्कि उसने अपने सांस्कृतिक प्रतीकों, धार्मिक आस्थाओं और सामुदायिक संगठन के माध्यम से प्रतिरोध के विविध और प्रभावी तरीके विकसित किए थे। इस प्रकार जुग्गा और दूम्ह दोनों मिलकर एक ऐसे बहुआयामी ग्रामीण प्रतिरोध की परंपरा को दर्शाते हैं, जिसमें नैतिकता, संस्कृति और सामाजिक संगठन का अद्वितीय समन्वय देखने को मिलता है।

जुग्गा आंदोलन के उद्भव के पीछे कई सामाजिक, आर्थिक और प्रशासनिक कारक एक साथ कार्य कर रहे थे, जो इसे केवल एक स्थानीय या आकस्मिक विद्रोह नहीं, बल्कि एक संरचित और बहुआयामी प्रतिरोध बनाते थे। सबसे प्रमुख कारण किसानों पर डाले गए अत्यधिक आर्थिक दबाव थे। बिलासपुर रियासत में लगान और करों का बोझ बेहद उच्च था, जिसके तहत कृषकों को अपनी फसल का एक बड़ा हिस्सा कर और अन्य आर्थिक शुल्क के रूप में देना पड़ता था। इस अत्यधिक राजस्व भार ने कृषकों की जीवन-यापन क्षमता को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया और उनके असंतोष का मुख्य स्रोत बन गया। इसके साथ ही बेगार प्रथा का कठोर और व्यापक रूप से लागू होना भी आंदोलन के कारणों में महत्वपूर्ण था। ग्रामीण समुदाय से बिना वेतन श्रम लेने की यह प्रथा न केवल आर्थिक शोषण का प्रतीक थी, बल्कि सामाजिक असमानता और न्याय के अभाव का भी सूचक थी।[20] किसानों को अपनी सामूहिक श्रम शक्ति और समय का जबरन योगदान देना पड़ता था, जिससे उनके सामाजिक और धार्मिक कर्तव्यों पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता था। यह अत्याचार स्थानीय प्रशासनिक अधिकारियों की दमनात्मक प्रवृत्ति से और अधिक तीव्र हो गया।

स्थानीय प्रशासन और रियासती अधिकारियों की दमनकारी नीतियाँ किसानों के असंतोष को और बढ़ावा देने वाली थीं। प्रशासन की जवाबदेही का अभाव, शिकायतों की अनदेखी, तथा भ्रष्टाचार और पक्षपात ने किसानों में शासन और प्रशासन के प्रति गहरी नाराजगी पैदा की। विशेष रूप से राजा अमरचन्द के शासनकाल में निरंजन तहसीलदार और अन्य स्थानीय अधिकारियों द्वारा भूमि अधिग्रहण और कर वसूली में अमानवीय व्यवहार ने आंदोलन की जड़ें और मजबूत कर दीं।

सामाजिक असमानताएँ और जातिगत विभाजन भी आंदोलन को जन्म देने वाले कारणों में सम्मिलित हैं। उच्च जाति और जमींदार वर्ग द्वारा कृषकों के आर्थिक और सामाजिक शोषण ने उनके सामूहिक संघर्ष को प्रेरित किया। ग्रामीण समुदाय में न्याय की अपेक्षा और अधिकारों की रक्षा की आकांक्षा ने सांस्कृतिक और धार्मिक प्रतीकों के माध्यम से प्रतिरोध को संगठित रूप दिया। जुग्गा आंदोलन में आत्मबलिदान, झोंपड़ी (जुग्गा) में बैठना और धार्मिक अनुष्ठान के माध्यम से विरोध करना इस सामूहिक असंतोष की अभिव्यक्ति थी। भूमि-नियंत्रण नीतियों और भूमि बंदोबस्त से संबंधित हस्तक्षेप भी किसानों की नाराजगी का एक महत्वपूर्ण कारण थे।[21] रियासती प्रशासन द्वारा भूमि पर जबरन अधिकार स्थापित करना और परिवारों की पारंपरिक भूमि को अधिग्रहित करना कृषकों के अस्तित्व और आजीविका पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रहा था।[22] इससे उत्पन्न असंतोष ने जुग्गा आंदोलन के लिए उपयुक्त परिस्थितियाँ तैयार कीं,

क्योंकि कृषक न केवल आर्थिक न्याय की माँग कर रहे थे, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों की रक्षा के लिए भी संघर्षरत थे।

इस प्रकार जुग्गा आंदोलन के कारण केवल आर्थिक शोषण तक सीमित नहीं थे। इसमें प्रशासनिक असंवेदनशीलता, सामाजिक असमानताएँ, भूमि-संबंधी हस्तक्षेप, धार्मिक और सांस्कृतिक चेतना तथा ग्रामीण समुदाय की सामूहिक सक्रियता का समन्वित प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। यही बहुआयामी संरचना इस आंदोलन को केवल एक विरोध की घटना नहीं, बल्कि हिमालयी रियासतों में किसानों के लिए अधिकारों और न्याय की माँग का संगठित ऐतिहासिक प्रदर्शन बनाती है। आंदोलनकारियों की प्रमुख माँगें अन्यायपूर्ण करों की समाप्ति तथा प्रशासनिक एवं आर्थिक सुधारों से संबंधित थीं। इन माँगों से स्पष्ट होता है कि कृषक समुदाय केवल तात्कालिक राहत नहीं चाहता था, बल्कि वह प्रशासनिक न्याय, आर्थिक संतुलन और सामाजिक सम्मान की पुनर्स्थापना की भी अपेक्षा रखता था। इस प्रकार जुग्गा आंदोलन ग्रामीण समाज की संरचनात्मक समस्याओं के विरुद्ध एक संगठित और सचेत प्रतिक्रिया के रूप में उभरता है। आंदोलन की सामाजिक संरचना भी उल्लेखनीय थी। उपलब्ध विवरणों से स्पष्ट होता है कि इसमें ब्राह्मण समुदाय की सक्रिय भागीदारी थी, किंतु इसे केवल किसी एक जाति-विशेष का आंदोलन नहीं कहा जा सकता। वास्तव में यह व्यापक ग्रामीण असंतोष की अभिव्यक्ति था, जिसमें विभिन्न सामाजिक समूह प्रशासनिक दमन और आर्थिक बोझ से प्रभावित थे।

जुग्गा आंदोलन ने न केवल तत्कालीन प्रशासन पर ही प्रभाव डाला, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर भी गहरे परिवर्तन को प्रेरित किया। राजनीतिक दृष्टि से इस आंदोलन ने रियासती प्रशासन को कृषकों की शिकायतों को गंभीरता से सुनने और सुधारात्मक कदम उठाने के लिए बाध्य किया। परिणामस्वरूप करों में आंशिक कटौती की गई, दोषी अधिकारियों के विरुद्ध कार्रवाई की गई और प्रशासनिक सुधारों की दिशा में पहल हुई। सामाजिक रूप से आंदोलन ने ग्रामीण समुदाय में एकजुटता और सामूहिक निर्णय-क्षमता को मजबूत किया। यह स्पष्ट हुआ कि सामूहिक संगठित प्रयास और प्रतीकात्मक विरोध के माध्यम से शासन और सत्ता पर नैतिक दबाव डाला जा सकता है। सांस्कृतिक दृष्टि से जुग्गा आंदोलन ने स्थानीय धार्मिक और सामाजिक प्रतीकों को राजनीतिक और सामाजिक चेतना के माध्यम में बदलने का कार्य किया। आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभावों के समन्वय ने इसे बहुआयामी आंदोलन बना दिया। इस प्रकार, यह आंदोलन हिमालयी रियासतों में कृषक प्रतिरोध की प्रकृति, संगठन और सांस्कृतिक गहराई को समझने के लिए एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक दृष्टिकोण प्रदान करता है। प्रशासनिक स्तर पर भी इस आंदोलन के परिणामस्वरूप न्यायिक अभिलेखों को नागरी भाषा में रखने, तहसील और थाना व्यवस्था को सुदृढ़ करने तथा भूमि बंदोबस्त की प्रक्रिया को व्यवस्थित करने जैसे सुधारात्मक कदम उठाए गए। इससे स्पष्ट होता है कि यह आंदोलन केवल विरोध तक सीमित नहीं रहा, बल्कि प्रशासनिक नीतियों को प्रभावित करने में भी सक्षम था।

निष्कर्ष

कहलूर रियासत में जुग्गा आंदोलन औपनिवेशिक काल में उभरते कृषक प्रतिरोध का एक महत्वपूर्ण और सशक्त उदाहरण है, जो यह स्पष्ट करता है कि हिमालयी पहाड़ी क्षेत्रों के किसान अपने अधिकारों और हितों के प्रति पूर्णतः सजग एवं सक्रिय थे। इस अध्ययन से यह सिद्ध होता है कि इस आंदोलन की उत्पत्ति केवल आर्थिक कारणों तक सीमित नहीं थी, बल्कि इसके पीछे सामाजिक, प्रशासनिक और संरचनात्मक शोषण की बहुस्तरीय प्रक्रिया कार्यरत थी। अत्यधिक लगान, बेगार प्रथा तथा स्थानीय प्रशासन की दमनात्मक नीतियों ने मिलकर कृषकों को प्रतिरोध के लिए प्रेरित किया। जुग्गा आंदोलन यह भी दर्शाता है कि औपनिवेशिक शासन और रियासती सत्ता के बीच एक जटिल

अंतर्संबंध विद्यमान था, जिसमें दोनों मिलकर ग्रामीण समाज पर नियंत्रण बनाए रखते थे। इस दोहरे सत्ता ढाँचे के कारण किसानों को औपनिवेशिक प्रभाव और रियासती प्रशासन दोनों का संयुक्त दबाव सहना पड़ा, जिसने उनके प्रतिरोध को और अधिक तीव्र एवं संगठित बनाया। विशेष रूप से जुग्गा जैसी प्रतीकात्मक परंपरा यह सिद्ध करती है कि कृषकों ने अपने प्रतिरोध को व्यक्त करने के लिए स्थानीय सांस्कृतिक और धार्मिक माध्यमों का उपयोग किया। इस प्रकार जुग्गा आंदोलन ने यह स्थापित किया कि पहाड़ी रियासतों में कृषक वर्ग निष्क्रिय शोषित समुदाय नहीं था, बल्कि वह एक सक्रिय ऐतिहासिक एजेंट के रूप में उभर सकता था।

इसके अतिरिक्त आंदोलन के परिणामस्वरूप प्रशासन को कुछ सुधारात्मक कदम उठाने पड़े, जिससे शासन व्यवस्था में आंशिक परिवर्तन देखने को मिले। साथ ही जुग्गा आंदोलन ने ग्रामीण समाज में एकजुटता, सामूहिक पहचान और अधिकारों के प्रति जागरूकता को सुदृढ़ किया। यह अध्ययन जुग्गा आंदोलन को केवल आर्थिक प्रतिरोध के रूप में नहीं, बल्कि सांस्कृतिक प्रतीकों और सामूहिक चेतना पर आधारित कृषक प्रतिरोध की विशिष्ट अभिव्यक्ति के रूप में स्थापित करता है। साथ ही इस आंदोलन ने ग्रामीण समाज में अधिकार-चेतना और संगठन की भावना को सुदृढ़ किया, जिसने आगे चलकर हिमालयी रियासतों में प्रजामंडल आंदोलनों के लिए अनुकूल आधार तैयार किया। इस दृष्टि से जुग्गा आंदोलन हिमालयी क्षेत्रों में कृषक प्रतिरोध की एक सशक्त परंपरा का प्रतिनिधित्व करता है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि जुग्गा आंदोलन न केवल कहलूर रियासत के इतिहास में, बल्कि समग्र रूप से हिमालयी क्षेत्रों में कृषक आंदोलनों की परंपरा को समझने में एक महत्वपूर्ण कड़ी है। यह अध्ययन स्थापित करता है कि स्थानीय स्तर के आंदोलन भी व्यापक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में सामाजिक परिवर्तन, राजनीतिक चेतना तथा प्रतिरोध की परंपराओं के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यह अध्ययन हिमालयी रियासतों में कृषक प्रतिरोध की व्याख्या को केवल आर्थिक दृष्टिकोण तक सीमित न रखकर उसके सांस्कृतिक और प्रतीकात्मक आयामों को भी रेखांकित करता है।

संदर्भ सूची

1. सी. एल. दत्ता, द राज एंड द शिमला हिल स्टेट्स: सोशियो-इकोनॉमिक प्रॉब्लम, एग्रेरियन डिस्टरबेंस एंड पैरामाउंटसी (जालंधर: ए.बी.एस. पब्लिकेशन, 1997), पृ. 180।
2. वही, पृ. 180।
3. चमन लाल मल्होत्रा, हिमाचल का क्रांतिकारिक इतिहास (शिमला: जयश्री पब्लिकेशन, 1996), पृ. 71।
4. एम. डी. ममगाईं, हिमाचल प्रदेश डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर: बिलासपुर (चंडीगढ़: पंजाब प्रेस, 1975), पृ. 57।
5. राजा आनंद चंद, बिलासपुर: पास्ट, प्रेजेंट एंड फ्यूचर (नई दिल्ली, 1954), पृ. 48।
6. ममगाईं, हिमाचल प्रदेश डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर: बिलासपुर (चंडीगढ़: पंजाब प्रेस, 1975), पृ. 57–58।
7. पी. एन. सेमवाल, पश्चिमी हिमालय क्षेत्र के अतीत की झांकी (दिल्ली, 1983), पृ. 209।
8. वही।
9. मियां अक्षर सिंह, बिलासपुर की कहानी (बिलासपुर: शिक्षा विभाग, बिलासपुर राज्य, 1941), पृ. 37–38।
10. ममगाईं, हिमाचल प्रदेश डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर: बिलासपुर (चंडीगढ़: पंजाब प्रेस, 1975), पृ. 57।
11. गणेश सिंह कवि, शशिवंश विनोद (1892; पुनर्मुद्रित संस्करण, शिमला: हिमाचल राज्य संग्रहालय, 2024), पृ. 324।
12. शक्ति सिंह चंदेल, कहलूर बिलासपुर थ्रू द सेंचुरीज (शिमला: उर्वशी बुक, 2007), पृ. 120।

13. ममगाईं, हिमाचल प्रदेश डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर: बिलासपुर (चंडीगढ़: पंजाब प्रेस, 1975), पृ. 57।
14. रणजीत गुहा, एलीमेंटरी एस्पेक्ट्स ऑफ पीजेंट इंसर्जेंसी इन कॉलोनियल इंडिया (नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1983), पृ. 3–8।
15. डेविड हार्डिमैन, द कमिंग ऑफ देवी: पश्चिमी भारत में आदिवासी असर्शन (नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1987), पृ. 15–20, 72–75।
16. एरिक स्टोक्स, द पीजेंट एंड द राज (कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1978), पृ. 45–50।
17. बिपन चंद्र, भारत का स्वतंत्रता संग्राम (नई दिल्ली: पेंगुइन, 1989), पृ. 70–75।
18. गोवर्धन सिंह मियां, हिमाचल प्रदेश का इतिहास (शिमला: हिमाचल कला, संस्कृति एवं भाषा अकादमी, 2020), पृ. 319।
19. चेतन सिंह, हिमालयन हिस्ट्रीज: इकॉनमी, पॉलिटी एंड रिलीजियस ट्रेडिशंस (नई दिल्ली: यूनिवर्सिटी ऑफ न्यू यॉर्क प्रेस, 2019), पृ. 118–119।
20. ममगाईं, हिमाचल प्रदेश डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर: बिलासपुर (चंडीगढ़: पंजाब प्रेस, 1975), पृ. 289।
21. हिमाचल प्रदेश स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास, शिमला, 1992, पृष्ठ 94।
22. हिमाचल प्रदेश डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर, बिलासपुर, एम. डी. ममगाईं, 1975, सेंट्रल सेक्रेटेरिएट लाइब्रेरी, चंडीगढ़: पंजाब प्रेस, पृष्ठ 56।